क्या खत्म हो जाएगा उत्तरी ध्रुव?

जयकुमार

अमरीका के नेशनल स्नो एंड आइस डैटा सेंटर का यह खुलासा चौंकाता तो नहीं है, लेकिन खतरे की घंटी ज़रूर बजाता है। सेंटर ने कहा है कि इस साल उत्तरी ध्रुव यानी आर्कटिक में पिघलने वाली बर्फ की मात्रा पिछले 33 साल में सर्वाधिक है। सेंटर के उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार इस वर्ष 32.90 लाख वर्ग कि.मी. क्षेत्र से बर्फ का आवरण पिघला है। यह पूरा क्षेत्र उतना ही विशाल है, जितना कि भारत। सेंटर का यह भी कहना है कि वर्ष 1979 में आर्कटिक पर बर्फ की परत जितनी सख्त थी, आज उसकी कठोरता में 40 फीसदी की गिरावट आई है। ज़ाहिर है अगर आज परत ढीली हुई है, तो कल उसके पिघलने की गति और भी तेज़ हो जाएगी।

एक नज़र में आर्कटिक

- धरती के दो ध्रुवों में से एक है आर्कटिक। यह उत्तरी ध्रुव कहलाता है। इस क्षेत्र में आर्कटिक महासागर के अलावा कनाडा, रूस, डेनमार्क, नार्वे, फिनलैंड, अमरीका, स्वीडन और आइसलैंड भी शामिल हैं।
- यह पांच महासागरों में से एक है।
- क्षेत्रफल 2.1 करोड़ वर्ग कि.मी.। इसमें से 1.30 करोड़ वर्ग कि.मी. क्षेत्र बर्फ से ढंका हुआ है। (तुलना के लिए भारत का क्षेत्रफल 32 लाख वर्ग कि.मी.)
- बर्फ से घिरा होने की वजह से यहां का औसत तापमान ऋण 10 डिग्री सेल्सियस होता है। सर्दियों में ऋण 68 डिग्री तक पहुंच जाता है।
- आर्कटिक सफेद ध्रुवीय भालू का प्राकृतवास है।

कैंब्रिज युनिवर्सिटी के प्रोफेसर पीटर वैडम्स तो यहां तक भविष्यवाणी करते हैं कि अगले चार से पांच वर्षों में यानी 2015-16 तक आर्कटिक की तमाम बर्फ पिघल जाएगी। प्रोफेसर वैडम्स की यह भविष्यवाणी अतिशयोक्ति हो सकती है, लेकिन यह तो साफ है कि खतरा कहीं निकट है।

इतने बड़े क्षेत्र से बर्फ पिघलने का मतलब है धरती पर ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव में और बढ़ोतरी होना। बर्फ की चादर सूरज से आने वाली रोशनी को वापस वायुमंडल की ओर परावर्तित कर देती है। इससे हमारी धरती ठंडी बनी रहती है। जब आर्कटिक महासागर से यह बर्फ पूरी तरह हट जाएगी तो सूरज की गर्मी सीधे पानी को तपाएगी। इससे ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव तो बढ़ेगा ही, साथ ही महासागर के बढ़ते तापमान की वजह से हमें एक साथ ढेरों जटिलताएं जकड़ती जाएंगी।

आर्कटिक के परिवेश को बचाने के लिए ग्रीनपीस संगठन लगातार दुनिया का ध्यान आकर्षित करता आया है। गत 14 सितम्बर को उसने आर्कटिक की बर्फ पर संयुक्त राष्ट्र के सभी 193 सदस्य देशों के झंडों से दिल बनाकर इस महासागर को बचाने की भावुक अपील की थी।

ग्रीनपीस जैसे तमाम संगठनों का मानना है कि आर्कटिक से बर्फ पिघलने की सबसे बड़ी वजह जीवाश्म ईंधन का अंधाधुंध इस्तेमाल है। ग्रीनपीस ने हाल ही में ऑस्ट्रेलिया के क्वींसलैंड में जो रिपोर्ट जारी की है, वह तो और भी भयावह संकेत दे रही है। इस रिपोर्ट के अनुसार ऑस्ट्रेलिया की सरकारी एजेंसी गैलिली बेसिन की प्रस्तावित 9 विशाल कोयला खदानों से 70 करोड़ टन से भी अधिक कार्बन डाईऑक्साइड वातावरण में उत्सर्जित होगी। अगर गैलिली को एक देश माना जाए तो वह धरती पर प्रदूषण फैलाने वाला सातवां सबसे बड़ा देश होता।

विनाश का वरदान

इस पूरे मामले में एक विडंबना यह भी है कि पर्यावरणविदों का एक बड़ा समुदाय जहां ग्लोबल वार्मिंग से आर्कटिक को

पहुंचने वाले नुकसान से चिंतित है, वहीं इस क्षेत्र की संपदा पर नज़र गड़ाए देश तो इसे अपने लिए वरदान मानकर चल रहे हैं। स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा हाल में जारी एक रिपोर्ट की मानें तो यही ग्लोबल वार्मिंग कई देशों के व्यावसायिक हितों को साधने का माध्यम बन सकता है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण क्षेत्र में गर्मी बढ़ रही है और बर्फ पिघल रही है। इससे यहां की प्रकृति में छिपे प्राकृतिक खज़ाने तक पहुंच और भी आसान होती जा रही है।

पर्यावरणविदों का मानना है कि अगर यहां प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की शुरुआत हो गई तो ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के लिए की गई तमाम संधियां अप्रासंगिक हो जाएंगी।

आर्कटिक वैसे तो बर्फ से आच्छादित इलाका है, लेकिन इसकी ठंडी परतों के नीचे ऊर्जा और खनिज के भारी भंडार छिपे होने का अनुमान है। यूएस जियालॉजिकल सर्वे की मानें तो यहां तेल और गैस के कुल भंडार का 40 फीसदी इस क्षेत्र में हो सकता है। इसके अलावा यहां कोयला, जस्ता और चांदी के भी विशाल भंडार होने की संभावना है। इसी साल 27 मार्च को रूस की रशियन एकेडमी ऑफ साइंसेज़ ने बताया है कि इस क्षेत्र में प्राकृतिक गैस के विशाल भंडार पाए गए हैं।

यही वजह है कि दुनिया की सभी शक्तियों की नज़रें इस इलाके पर टिक गई हैं। प्रकृति प्रेमियों और पर्यावरणविदों के लिए यह चिंता की बात है। अगर इन संसाधनों के दोहन के लिए दुनिया में होड़ लग गई तो इसके इकोसिस्टम को बचाना और भी मुश्किल हो जाएगा।

कहां से हुई शुरुआत?

आर्कटिक के संसाधनों पर कब्ज़े की शुरुआत अगस्त 2007 से मानी जाती है। इसी साल 2 अगस्त को रूस की दो पनडुब्बियों मीर-1 और मीर-2 उत्तरी ध्रुव (आर्कटिक) के नीचे समुद्र तल में पहुंची और वहां रूस का झंडा फहरा दिया। आर्कटिक के इतिहास में यह ऐसा पहला मौका था, जब किसी देश का कोई मिशन समुद्र तल के नीचे पहुंचा था। रूस ने इस मिशन को वैज्ञानिक शोध का नाम दिया, लेकिन यह दरअसल इस क्षेत्र में अधिकार जताने की दौड़ की शुरुआत थी।

इससे अमरीका और चीन सहित कई देश सतर्क हो गए। उस समय सामरिक विशेषज्ञों ने रूस के इस कदम को प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न इस क्षेत्र में अधिकार जताने की अंधी दौड़ की शुरुआत करार दिया था।

आखिरकार वही हुआ, जिसकी आशंका थी। आर्कटिक की सीमा से जुड़े आठ देशों ने वहां मौजूद तेल, गैस और बहुमूल्य खनिज संपदा के दोहन की तैयारियां शुरू कर दी। इस बीच, रूस ने ऐलान कर दिया कि वह आर्कटिक में अपने हितों की रक्षा के लिए वर्ष 2015 तक इस क्षेत्र के लिए अलग से सैन्य बल स्थापित करेगा। हाल ही में रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने यह भी कहा है कि आर्कटिक में बुनियादी ढांचे के विकास के लिए उनका देश 21 अरब रूबल खर्च करेगा।

वर्ष 2011 में बहुराष्ट्रीय तेल कंपनी बीपी ने रूस की सरकारी कंपनी रोसनेफ्ट के साथ हाइड्रोकॉर्बन संसाधनों की तलाश के लिए एक समझौते पर दस्तखत किए। यही नहीं, अन्य कई देशों की कोयला, तेल और गैस कंपनियां भी आर्कटिक के पास अपने आधार स्थापित कर रही हैं।

इससे पहले इसी साल मार्च में नार्वे ने बर्फ में सैनिकों की ट्रेनिंग का एक बड़ा अभियान चलाया था, जिसमें 14 देशों के करीब 16 हज़ार सैनिकों ने भाग लिया था। इससे एक माह पहले फरवरी में अमरीका, कनाडा और डेनमार्क सहित आर्कटिक

काउंसिल से जुड़े आठ देशों के सैन्य प्रमुखों ने इस क्षेत्र की सुरक्षा से जुड़े मुद्दों पर चर्चा की थी। सैन्य प्रमुखों की इस क्षेत्र में दिलचस्पी से साफ है कि इसके आर्थिक महत्त्व को देखते हुए भविष्य में यह इलाका टकराव का प्रमुख केंद्र बन सकता है। हाल ही में चीन के एक प्रमुख सैन्य अधिकारी ने भी यह कहकर आर्कटिक के प्रमुख सामरिक क्षेत्र में तब्दील होने के संकेत दे दिए हैं कि यह पूरी दुनिया का है, न कि केवल कुछ देशों का।

इसी साल 31 अगस्त को अमरीका के ओबामा प्रशासन ने शेल ऑइल को अलास्का से सटे आर्कटिक क्षेत्र में तेल की खोज की अनुमति देकर क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की प्रतिस्पर्धा को ऐड़ लगा दी है। शेल को जिस इलाके चुकची सागर में तेल की खोज करने की अनुमति दी गई है, वह ध्रुवीय भालुओं के लिए काफी महत्त्वपूर्ण इलाका है। ओबामा प्रशासन के इस निर्णय को लेकर पर्यावरणविद काफी आक्रोशित हैं।

अलास्का स्थित सेंटर फॉर बायोलॉजिकल डायवर्सिटी के निदेशक रेबेका नाबलिन कहते हैं कि आर्कटिक में तेल की खोज की अनुमति देकर राष्ट्रपति बराक ओबामा ने ऐतिहासिक भूल की है। आर्कटिक की कठोर परिस्थितियों में तेल का ड्रिलिंग न केवल खतरनाक है, बल्कि अगर इससे वहां तेल का रिसाव हो जाता है तो उसे साफ करना असंभव हो जाएगा। उनका कहना है कि एक बार अगर यहां के प्राणियों का प्राकृतवास खत्म हो गया तो उसे फिर से बहाल करना संभव नहीं रह जाएगा। हज़ारों सालों से यहां के परिवेश में रह रहे अद्वितीय प्राणी खत्म होने की कगार पर पहुंच जाएंगे।

इस बीच, अमरीका में 10 लाख से भी अधिक लोगों ने आर्कटिक में तेल ड्रिलिंग को रोकने की मांग करते हुए राष्ट्रपति ओबामा को संदेश भेजे हैं।

एक खतरा यह भी

आर्कटिक के लिए खतरा केवल तेल और गैस के दोहन से ही नहीं है। एक खतरा पर्यटन से भी है। इसे एक मुनाफादायक पर्यटन स्थल के रूप में भी देखा जा रहा है। आखिर ध्रुवीय भालुओं को कौन नहीं देखना चाहेगा? अकेले वर्ष 2010 में ही आर्कटिक से लगी सीमाओं वाले आठ देशों के क्षेत्र में 50 हज़ार से अधिक पर्यटक पहुंचे।

पर्यटन स्थल के रूप में इसके विकास से न केवल इस पर कब्ज़ा जमाने को आतुर देशों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी, बल्कि इसके इकोसिस्टम को भी वही नुकसान पहुंचेगा जो दुनिया के तमाम स्थलों की इकोसिस्टम को पर्यटन स्थल में बदलने के कारण पहुंचा है।

क्या हो भारत की भूमिका

जिस तरह चीन ने यह कहा है कि आर्कटिक के संसाधानों पर केवल कुछ चुनिंदा देशों का अधिकार नहीं हो सकता, क्या उसी तरह का नज़रिया भारत को भी रखना चाहिए? देश में एक वर्ग इसके पक्ष में है। उसका कहना है कि आर्कटिक के संसाधनों पर भारत को भी उसी तरह दावा करना चाहिए, जैसा कि चीन और अन्य देश कर रहे हैं। लेकिन पूर्व विदेश मंत्री श्याम सरन इससे सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि भारत को इस दौड़ में शामिल होने के बजाय आर्कटिक काउंसिल के स्थाई सदस्यों की सूची में शामिल होने का प्रयास करना चाहिए, ताकि वह इस क्षेत्र में व्यापक भूमिका निभा सके। भारत को इस बात की पहल करनी चाहिए कि आर्कटिक पूरी दुनिया के लोगों का है और कुछ देशों के निहित आर्थिक हितों के कारण इसे दांव पर नहीं लगाया जा सकता। गौरतलब है कि आर्कटिक क्षेत्र से सम्बंधित समस्याओं के समाधान के लिए एक आर्कटिक काउंसिल बनाई गई है। आठ देश - कनाडा, रूस, डेनमार्क, नार्वे, फिनलैंड, अमरीका (अलास्का), स्वीडन और आइसलैंड इसके सदस्य हैं। इन आठ देशों ने 1991 में आर्कटिक पर्यावरण रक्षा रणनीति संधि पर दस्तखत किए थे। इनके अलावा पांच देश ब्रिटेन, फ्रांस, नेदरलैंड, पौलेंड और इटली स्थाई सदस्य भी हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***